प्राचीन भारत में नारियों की स्थिति
B.A. Part I Paper - II Group : A

Q 7. Position of Women in Ancient India ?

Answer — हिन्दू समाज में स्त्रियों का सम्मान और आदर प्राचीन काल से ही आदर्शात्मक और मर्यादा युक्त रहा है। उनके प्रति समाज की स्वाभाविक निष्ठा और श्रद्धा रही है। परिवार और समुदाय में उनके द्वारा किये जाने वाले योगदान का सर्वदा महत्व और गौरव रहा है। और नारी सर्वशक्तिमान सम्पन्न तथा विद्या, यश और सम्पत्ति की प्रतीक समझी गयी है। धीरे-धीरे उनका महत्व इतना अधिक बढ़ गया कि उसके बिना अकेला पुरुष अपूर्ण और अधूरा समझा जाने लगा। "मनु" का कथन है कि केवल पुरुष कोई वस्तु नहीं अर्थात अपूर्ण रहता है। किन्तु स्त्री स्वदेह तथा सन्तान ये तीनों मिलकर ही पुरुष पूर्ण होता है और जो पति है वही स्त्री है। अतः उस स्त्री से उत्पन्न संतान उस स्त्री को पति की होती है। इस प्रकार स्त्री-पुरुष को ~~यार~~ शरीराई और अर्द्धांगिनी मानी गयी है। श्री और लक्ष्मी के रूप में वह मनुष्य के जीवन को सुख और स... से दीप्त करने वाली कही गयी है। जब तक मनुष्य मर्यादा की प्राप्ति नहीं कर लेता था वह आधा ही कहा जाता था। आधा शरीर सब कुछ नहीं कर पाता था और प्रजोत्पत्ति भी पूरा होने पर ही सम्भव हो सकती थी।

" यावन विन्दते जायां तावदर्धो भवेत पुमान
नार्द्ध प्रजायते सर्व पुजायते हाप्ति हृप्ति ॥"

॥ स्तावानेवा पुरुषो पज्जायाऽत्मा प्रजेति ।
विप्रा प्राहुस्तथा चैतद्धी भर्ता सा स्मृतागंना ॥

परन्तु स्त्री की स्थिति युग के अनुकूल परिवर्तित होती रहती है। ~~परन्तु स्त्री की स्थिति~~ वैदिक युग में उसकी अवस्था अत्यन्त उन्नत एवं परिस्कृत था।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह सम्मान रूप से अधिकृत थी। शिक्षा धर्म व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास में उसका महान योगदान रहा है।

पुरुषों की तुलना में वह किसी प्रकार से कम नहीं थी। वह पति के कार्य में सहयोग प्रदान करती थी इस प्रकार वह पुरुष की तरह समाज की स्थायी और गौरवशाली अंग थी। वह सुसभ्य होती थी। पारिवारिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों को वह निष्ठा पूर्वक पालन करती थी तथा पति के साथ मिलकर गृह के धार्मिक कार्य सम्पन्न करती थी। वस्तुतः स्त्री और पुरुष दोनों गृहस्थी रथ के दो जुड़े हुए पहिए हैं। उस युग में पत्नी ही गृह की परिचायक मानी जाती थी। गृह और पत्नी दोनों का अन्योयाश्रित सम्बन्ध माना जाने लगा। और बिना पत्नी के गृह की कल्पना व्यर्थ मानी गयी।

उत्तर वैदिक युग में स्त्रियों का आदर-सम्मान पूर्वक बना रहा। शिक्षा के क्षेत्र में उसका स्थान पुरुषों के समकक्ष था। शिक्षिता कन्या की प्राप्ति के लिए विशेष अनुष्ठान का आयोजन किया जाता था। इस युग के जो स्त्री-पुरुष शिक्षित थे वे ही विवाह योग्य समझे जाते थे। ऐसी भी स्त्रियाँ थी जो जीवन भर विद्याध्ययन में लगी रहती थी और ब्रह्मचारी ब्रह्मवादनी कही जाती थी। किन्तु धीरे-धीरे इस युग में वैदिक कर्मकांड की जटिलता बढ़ती गयी और याज्ञिक कार्यों में शुद्धता एवं पवित्रता के नाम पर आडम्बर बढ़ता गया। जिसके फलस्वरूप स्त्रियों को याज्ञिक कार्यों से अलग रखने का उपक्रम किया जाने लगा तथा उन्हें वैदिक मंत्रों के उच्चारण के उपयुक्त नहीं माना गया। उसका कारण यह लगता है कि इस युग तक अन्तर्जातिय विवाह का प्रचलन हो चुका था। जिसमें दूसरे वर्ग की ऐसी स्त्रियाँ होती थी जिनका वैदिक वाङ्मय से कोई परिचय नहीं होता था। और वे वैदिक मंत्रों से भ्रष्ट उच्चारण करती थी। अतः वैदिक साहित्य को शुद्ध और सही बनाये रखने के लिए स्त्रियों को अलग रखने का नियम बना, यहीं से स्त्रियों की दासता शुरु होता

Scanned with CamSc

है।

सुत्रों एवं स्मृतियों के काल में आकर स्त्रियों की स्थिति और भी दयनीय हो गयी; उनपर तरह-तरह के बन्धन और आरोप लगाये गये। इनकी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, एवं व्यक्तित्व सभी स्थितियों पर प्रतिबन्ध लगे। जन्म से मृत्यु तक उसे पुरुष के नियन्त्रण में रखने के लिए निर्देशित की गयी। कन्या, पत्नी और माता जैसी स्थितियों में क्रमशः पिता, पति और पुत्र द्वारा नियंत्रित मानी गयीं। निश्चित ही यह प्रतिबंध किसी पवित्रता और सुरक्षा के लिए था। मनु ने लिखा है —— "पिता रक्षति कौमार भर्ता रक्षित यौवने।
रक्षति रक्षमति स्थवीरे पुत्रान स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति

कन्या को धरोहर के रूप में माना जाने लगा। जिसको पिता अथवा अभिभावक के लिए वह एक समस्या भी बनती गयी। कन्या एवं पुत्र के आवागमन पर पुत्र का स्वागत होने लगा। तथा दोनों के समारोह के कार्य अलग-अलग प्रकार के थे। पूर्व मध्य युग तक कन्या शक्ति के रूप में मानी जा चुकी थी। शाक्त धर्म के प्रभाव के कारण उसे गौरी और भवानी का रूप दिया गया किन्तु उसके शक्ति के रूप को समझकर भी पिता इसके प्रति दायित्व के भाव से बोझिल होते रहे।

पूर्व मध्यकाल में तक आकर उस पर कठोर नियन्त्रण हो गये। धर्म और समाज के रक्षा के नाम पर अनेक ऐसी व्यवस्थाओं का नियम हुआ जिससे स्त्रियों की दशा दिन प्रतिदिन और भी दयनीय होती गयी। इस प्रकार अनेक बन्धनों के घेरे में उसका व्यक्तित्व सीमटकर रह गया।

स्त्री की स्वतंत्रता:—— वैदिक काल में स्त्री जितनी स्वतन्त्र और मुक्त थी उतनी परवर्ती काल में किसी भी युग में नहीं थी। सभी दृष्टियों से वह पुरुष के समान थी। सभी ज्ञान, यज्ञ, आदि विभिन्न

क्षेत्रों में वह स्वतन्त्रता पूर्वक सम्मिलित होती थी। उस युग में बहुत से ऐसी विदुषी स्त्रियां थी जिन्होंने ऋग्वेद की ऋचाओं का प्रणयन किया था। ज्ञान और विद्वता के क्षेत्र में ही नहीं लौकिक याज्ञिक कार्यों में भी वे अग्रणी थी। ब्रह्मयज्ञ में जिन ऋषियों का गणना की जाती है उनमें सुलभा, गार्गी आदि विदुषियों के भी नाम लिये जाते हैं। जनक यज्ञ के अवसर पर जो धार्मिक शास्त्रार्थ आयोजित किया था उसमें गार्गी ने अपनी विलक्षण तर्कशील और सूक्ष्म विचार तंतुओं से दुरुह प्रश्न को बुनकर याज्ञवल्क्य ऋषि के दाँत खट्टे कर दिये। इन उदाहरणों से यह पता चलता है कि उस युग के स्त्रियाँ स्वतन्त्रता पूर्वक पुरुषों के साथ सभी कार्यों में सम्मिलित होती थी। उसके मान और सम्मान में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। उत्तर वैदिक काल से ही नारी की दशा अवनति की ओर अग्रसर होने लगी। उसके लिए निन्दनीय शब्दों का प्रयोग होने लगा। उसे असत्यभाषा कहा गया तथा पुरुषों के साथ यज्ञ में समान भाग लेने से वंचित कर उसकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबंध लगाया गया। इस तरह उनपर सामाजिक और धार्मिक अनेक प्रकार के नियंत्रण लगाये गये जो आगे चलकर और भी विस्तृत हो गये।

धर्मसूत्रों और स्मृतियों के युग में स्त्री की दशा पूर्णतः पतनोन्मुखी हो गयी। स्त्री के साथ भोजन करने वाला पुरुष खराब आचरण वाला कहलाने लगा। उस स्त्री की प्रशंसा की गयी जो प्रतिवाद करने वाली थी। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया था तथा उसके शरीर पर पति का पूर्ण रूप से अधिकार हो गया। इस प्रकार स्वतन्त्र एवं उन्मुक्त पर अनेक प्रकार के अंकुश लगाये गये। पूर्व मध्ययुग तक आकर इसके सारे अधिकार सीमित कर दिये गये वे घर से बिना कहे और बिना चादर ओढ़े न

Scanned with CamSc

निकले, शीघ्रता पूर्वक न चलें। सन्यासी एवं वृद्ध वैद्य के अतिरिक्त किसी भी पुरुष से बातें न करें। अपनी नाभी खुली न रखे, मुँह ढके बिना न हँसे, एड़ी तक कपड़ा पहने, पति या सम्बन्धियों से घृणा न करें तथा धूर्त, वैश्या, भाग्य बताने वाली आदि दुःशील स्त्रियों के साथ न रहे। इस प्रकार अनेक प्रकार के नियन्त्रण उस पर लगाये गये। दासी के रूप में उसे सभी गृहस्थ कार्य करने का निर्देश दिया गया। अलबरूनी भी लिखता है कि कन्या की अपेक्षा पुत्र का अधिक ध्यान रखा जाता था।

नारी-शिक्षा : वैदिक युग में स्त्री की शिक्षा उच्चतम सीमा पर थी। वह बुद्धि और ज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी थी। उसे यज्ञ सम्पादन और वेदाध्ययन करने का पूर्ण अधिकार था। दर्शन और तर्क शास्त्र में भी वे निपुण थीं। पति के साथ समान रूप से वे यज्ञ में सहयोग करती थी। राम के युवराज पद पर अभिषेक के समय कौशल्या ने यज्ञ किया था। महाभारत से ज्ञात होता है कि पांडवों की माँ कुन्ती अथर्ववेद में पारंगत थी। इससे पता चलता है कि उस युग की स्त्रियाँ पंडिता होती थी। उस युग की कन्याएँ ब्रह्मचर्य का अनुगमन करते हुए "उपनयन संस्कार" भी कराती थी। कन्या के लिए विधान का उल्लेख मनु ने भी किया है। वैदिक युग में छात्राओं के दो वर्ग थे, एक सद्योवधू और दूसरा ब्रह्मवादिनी- सद्योवधू के छात्रायें थी जो विवाह के पूर्व तक कुछ पढ़ लेती थी तथा ब्रह्मवादिनी वे थी जो शिक्षा समाप्त करने के बाद विवाह करती थी। तथा कुछ ऐसी भी स्त्रियाँ थी जो जीवन भर अध्ययन में लीन रहती थी और विवाह नहीं करती थी। ऋषि कुश ध्वज की कन्या देववती इसका सबसे उदाहरण मिलता है। वे दर्शन मीमांसा, साहित्य आदि विभिन्न-

विषयों की पंडिता थी। काश्वकुमशनी में मीमांसा जैसे कठीन एवं गुढ़ विषय पर पुस्तक लिखी है। जिसकी रुचि अलंकारों में न होकर दर्शन शास्त्रों में थी। जनक के राज्यसभा में होने वाली विश्रुत विद्वत गोष्ठी में गार्गी ने अपनी अद्भुत तर्क शक्ति से याज्ञवल्क्य जैसे महर्षि को चौंका दिया तथा अपनी पृच्छाओं से उन्हें ही नहीं बल्कि पुरे विस्तृत समाज को स्तब्ध कर दिया।

अनेक महिलायें अध्यापकों का जीवन व्यतीत करती थी। ऐसी जो अपना शिक्षण कार्य उत्साह और लगन के साथ करती थी। ऐसी स्त्रियाँ "उपाध्याया" कही जाती थी, वे छात्राओं को पढ़ाती थी। यद्यपि उस युग में सह: शिक्षण का भी प्रचलन था। पुराणों से पता चलता है कि नारी शिक्षा के दो रूप थे। एक अध्यात्मिक और दूसरा व्यवहारिक। ~~व्यवहारिक~~ आध्यात्मिक ज्ञान में बृहस्पति भगिनी, अपर्णा, मनोधारणी, सतरूपा कन्याओं का उल्लेख हुआ है।

सम्पति में अधिकार:—

हिन्दू समाज में स्त्री को सम्पति का अधिकार स्वीकार किया गया है तथा उन विशेष परिस्थितियों का भी विश्लेषण किया गया है जिनके कारण सम्पति में वह अपना हिस्सा प्राप्त करती था वैसे वैदिक काल में कुछ ऐसे विवरण हैं जो उसके इस अधिकार को स्वीकार नहीं करते हैं जैसे — केवल वही कन्या जिसका भाई नहीं होता था पिता की सम्पति की उत्तराधिकारिणी मानी जाती थी। किन्तु ये अपवाद ही हैं। धन में प्रायः उसका हिस्सा रहा ही है। वह पुत्र से किसी भी प्रकार कम नहीं समझी जाती थी। अतः वैदिक युग में ~~वि~~ स्त्री का सम्पति का अधिकार स्वीकार किया जाता था। चौथी शदी ई० पू० तक यह व्यवस्था समाज में प्रचलित थी किन्तु दूसरी शदी ई० पू० में आकर स्त्री ~~पर~~ शिक्षा पर अनेक प्रतिबंध लग गये। जिसके

Scanned with CamSc

कारण उनकी सम्पति विषयक अधिकार भी क्षतिग्रस्त हुआ।

पुत्र के रहते हुए कन्या का सम्पति में अधिकार वैदिक युग में रहा है। धर्मशास्त्रों ने भी इसे स्वीकार किया है। कौटिल्य ने भी पुत्री के प्रति सहृदयता करते हुए अमीर पुत्री को उत्तराधिकारीजी घोषित किया। चाहे उसे कम ही हिस्सा क्यों नामिलें। विष्णु और नारद ने कन्या के हिस्से का समर्थन किया है। किन्तु अपने हिस्से को साथ ले जाने का आज्ञा नहीं किया है। उनका कहना है कि कन्या उतना ही हिस्सा प्राप्त करे जितना अविवाहित रहने तक व्यय होता।

विधवा का भी सम्पति में अधिकार माना गया है। पति की मृत्यु के बाद प्रायः विधवा ही उत्तराधिकारीजी होती थी।

स्त्रियों के प्रति समाज का व्यवहार:—

नारी के प्रति हिन्दू समाज का व्यवहार दिनों-दिन कठोर होता गया। उत्तर वैदिक काल से पुरुष का उसके प्रति अविश्वास तथा अनुत्तरदायित्व की भावना बढ़ती गयी। उसे हीन दृष्टि से देखा जाने लगा। कुछ शास्त्रकारों ने संसार के अवगुण से उसे आरोपित किया है। कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति स्त्री के दोषों को अपने सौ वर्षों के जीवन तक गिनता रहे तो भी वह उसके दोषों का बखान किये बिना ही मर जायेगा। इस प्रकार स्त्रियों के प्रति समाज की दृष्टि अच्छा नहीं था।

लेकिन वैदिक साहित्य में यह स्पष्ट है कि इस काल में स्त्रियों का समाज में बहुत आदर था। परिवार में वे गुरुजनों का आदर करती थी तथा उनके विचार परिवार के सभी लोगों में मान्य थे। वे सभी सामाजिक तथा धार्मिक उत्सवों में अपने पति के साथ सम्मिलित होती थी।

Scanned with CamScanner